दीमक

राकेश कुमार त्रिपाठी

प्रकाशक: नॉटनल

ISBN:

प्रकाशन: जनवरी, 2021

© राकेश कुमार त्रिपाठी

भूमिका

पाषाण युग में, जब चारों तरफ़ अलग-अलग आकार वाले पत्थर के टुकड़े बिखरे रहते होंगे, इंसान हाथ में कोई भी टुकड़ा उठाकर अपने काम में लाता होगा। लेकिन इंसानी सभ्यता में सबसे पहला हथियार, सबसे पहला औज़ार, सबसे पहला उपकरण संभवत काठ से ही बना। काठ यानी लकड़ी। जिसकी कोई कमी नहीं। जितना मन उगा लो – जितना मन काट लो! ज़रूरत के लिए कमी नहीं है। लेकिन लालच के सामने जंगल भी खाली हो जाते हैं। इंसान ही दुश्मन बना अपनी सभ्यता के पहले साथी का। इंसान के बाद काठ का सबसे बड़ा दुश्मन है – दीमक। अंदर ही अंदर खोखला कर देता है। इंसानी सभ्यता का भी एक प्रमुख शत्रु। आज का जो दौर है, उसमें शायद इन शत्रुओं की पहचान करना ही मनुष्यों के जीवन संघर्ष की सबसे अहम ज़रूरत हो गई है। हमें जानना होगा-पहचानना होगा कि कौन सा दीमक है जो हमें अंदर ही अंदर शून्यता से भर रहा है। कौन सा दीमक हमारी सारी संवेदनशीलता को चट किए जा रहा है! कौन सा दीमक है जो हमारे सारे सिस्टम को खाए जा रहा है!

दीमक ऐसे तो इस कहानी-संग्रह की एक कहानी का शीर्षक भी है और प्रतीकात्माक कथावस्तु भी। लेकिन इस संग्रह की हर कहानी की मूल आत्मा में यही सवाल छिपे हुए हैं, जिस कारण इस संग्रह का यही नाम रखना मुझे समीचीन प्रतीत हुआ। हर क्षण, प्रति पल कुछ ना कुछ क्षय हो रहा है। कुछ खाली हो रहा है। उस रिक्तता को भरने की, उस सड़न को स्वस्थ करने की भी कोशिश करनी है, लेकिन उससे भी पहले कोशिश करनी होगी कि उस "दीमक" की पहचान करने की क्षमता को हम अपने अंदर पैदा कर सकें जो हमें अंदर ही अंदर कुतर-कुतर कर खाए जा रहा है।

इस संग्रह की कुछ कहानियाँ साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ बिलकुल ही पहली बार पाठकों के समक्ष प्रस्तुत होंगी।

अनुक्रम

औरंगज़ेब की सड़क	4
कैमरे की निगरानी	16
मुस्कान	22
अंतिम फ़ोन कॉल	30
दीमक	45
काल-कथा उर्फ़ जहाँआरा का इत्र	53

औरंगज़ेब की सड़क

"दही का थोड़ा सा जामन दूध में डाल दो तो कुछ घंटा के बाद वह दही बन जाता है। मल्लब कि दही जमाने के लिए दही का होना ज़रूरी है। बात का बतंगड़ बनाते हुए अगर यह कहा जाए कि आप जो दही आज खा रहे हैं - उसमें थोड़ा सा अंश सालों पहले के दही का भी है तो बिल्कुल ग़लत तो नहींए होगा। दही था.... तभी तो दही है।"

जुम्मन मियाँ ने आँखें फाड़ते हुए रामधनी के हाथ से चाय का ग्लास लिया। उसे दूसरे हाथ में जल्दी से बदलते हुए पहले वाले हाथ की ऊँगलियों पर ज़ोर की फूँक मारी और नाराज़गी भरे स्वर में कहा - "अरे रामधनी, गरम चाय है! ध्यान से दो! ऊपर तक लबालब भर देते हो!"

चाय तो गरम थी। लेकिन जुम्मन के गुस्से का कारण रामधनी की बातें भी थीं और कुछ अपनी दिमागी हालत भी थी। उसने अमीना को मिलने के लिए कहा था। आने का दिन मुक़र्रर नहीं किया, लेकिन इन्हीं दो-चार दिनों में आएगी। कहा था - सीधे उसके ठेले पर आ जाए। औरंगज़ेब रोड के पास लगाता है वह अपना सब्ज़ी का ठेला। अमीना आएगी तो उसे अच्छा लगेगा। अमीना से मिलना उसे हमेशा से अच्छा लगता है - लगता था। जब वह जवान था और अमीना से निकाह करना चाहता था - तब से! उसे अमीना तब भी अच्छी लगती थी जब वह इटावा छोड़कर चालीस साल पहले पहली बार दिल्ली आया था। वह दिल्ली स्टेशन उतरा, उससे एक रोज़ पहले ही इमरजेंसी लगी थी। इमरजेंसी के दौरान उसके साथ 'वह' भयानक हादसा हो गया। उस हादसे के बाद उसके तो दिल में आया था कि अमीना को पसंद करने का ये ख़्याल दिल से निकाल दे, लेकिन उससे हो ना पाया। हालाँकि उसने ख़ुद पर क़ाबू किया और कभी दिल की बात अमीना को नहीं बताई। अमीना का ब्याह जुम्मन के फूफाज़ाद भाई से हो गया और वह रिश्ते में उसकी भाभी बन गई। जुम्मन को वह फिर भी अच्छी लगती थी। ख़ुदा से ख़ौफ़ खाने वाले जुम्मन ने कभी बुरी निगाह नहीं डाली अमीना पर, ना ही मन में कभी कोई बदख़्याली आने दी। जुम्मन के दिल में कभी-कभी यह ख़्याल आता कि वह कितना शरीफ़ है। फिर दिल के कोने से टीस उठती

और बड़ी कमज़ोर आवाज़ में उससे पूछती - "क्या मियाँ! अमरजेंसी के दौरान ज़बरदस्ती नसबंदी ना करवा देते वह गुंडे लोग तो भी क्या ऐसे ही नेक बने रहते?"

हादसे के बाद उसे अपने–आप से अजीब सी घिन्न आती थी। वह हादसा हुआ और जुम्मन के कुछ समझ पाने से पहले ही उसकी पूरी ज़िंदगी बदल कर चला गया। पीछे छोड़कर गया चंद रुपए जो इटावा में जाकर चुपचाप दो महीने पड़े रहने में ही खर्च हो गए। खर्च हो गई उसकी चाहत जो सालों तक उसने अमीना के लिए पाली थी। वह अब अमीना के तो क्या, किसी भी औरत के क़ाबिल नहीं था। जुम्मन वापस दिल्ली लौट आया। चालीस साल....!!! अब दिल्ली उसकी है... वह दिल्ली का।

इटावा आना-जाना लगा रहा। अमीना अच्छी लगती रही। उसके बच्चे अच्छे लगते रहे। फूफाज़ाद भाई मोहसिन भी अच्छा लगने लगा। चालीस साल में दिल्ली में कितनी सरकारें बदलीं, कितनी नई सड़कें बनीं, नई इमारतें बनीं, नए बाज़ार बने, लेकिन जुम्मन की सब्ज़ी का ठेला वहीं लगता है - तुगलक रोड और औरंगज़ेब रोड की क्रॉसिंग से थोड़ा आगे एक गली के अंदर। दो-चार दिन में कभी भी.... या हो सकता है आज ही... अमीना वहीं आएगी। जुम्मन को बड़ा अच्छा लग रहा है। रह रह कर जुम्मन सोचता है कि कहीं उसे अच्छा इसलिए तो नहीं लग रहा है कि अमीना उसके दस हज़ार रुपए भी लौटाएगी जो उसके ख़ाविंद को कभी सालों पहले जुम्मन ने दिए थे। कोई यह ग़लती से भी ना सोच ले कि जुम्मन ने कभी वह पैसे वापिस माँगे होंगे। उसका फूफाज़ाद भाई मरा और उसकी लाश को दफ़न करने के साथ-साथ पैसों वाली बात भी जुम्मन के दिल में दफ़न हो गई थी। अमीना के दिल में भी दफ़न ही रहती लेकिन इसी बीच उसका छोटा बेटा दुबई चला गया और शुरू-शुरू में दो-चार बार घर में पैसे भेजने लगा। पैसे आए तो अमीना के सीने में दबी उसके ख़ाविंद की बात उसके दिमाग को परेशान करने लगी- "जुम्मन भाईजान के पैसों का बोझ लेकर जा रहा हूँ!" अमीना ने ख़ुद ही बात छेड़ी। जुम्मन ना-ना करता रहा। अमीना ने ज़ोर देकर कहा - "रज़िया के घर जाना है। जमाई डेढ़ महीना पहले ही टिकट कटा कर हाथ में थमा गए हैं। दिल्ली जाऊँगी। वहाँ स्टेशन पर कुछ घंटे बाद मकराना की ट्रेन पकड़नी है। तुम्हारे घर तो ना जा पाऊँगी। लेकिन तुम्हारी दुकान पर आकर उनकी आख़िरी ख़्वाहिश ज़रूर पूरी करूँगी।"